E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

नचिकेता द्वारा याचित तीन वर

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

अपने पिता वाजश्रवस के यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् उनके द्वारा प्रदत्त दयनीय दान की वस्तुओं को देखकर परम आस्तिक नचिकेता ने तीन बार याचना की-'तात कस्मै मां दास्यतीति'। क्रोधाविष्ट पिता के मुख से मुख से सहसा यह वचन निकल पड़ा-'मृत्यवे त्वा ददामीति'।

पिता के इस वचन का पालन करते हुए नचिकेता यमराज के भवन चला जाता है। संयोगवश मृत्युदेव की अनुपस्थिति में नचिकेता बिना भोजनादि के ही वहीं पर तीन रात्रि तक पड़ा रहा। अतिथिसेवा के माहात्म्य के मर्मज्ञ को जब यह बात विदित हुई तो वे अतिशय खिन्न हो गए। अतिथि की उपेक्षा से सम्भावित अनिष्ट के निवारणार्थ उसने तत्क्षण नचिकेता को नमस्कार किया और स्वेच्छा से तीन वर मांगने को कहा-

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे
अनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्स्वस्ति मेऽस्तु
तस्मात्प्रति त्रीन्वरान्वृणीष्व।।

नचिकेता द्वारा याचित तीनों वरों का विस्तृत विवेचन आगे किया जा रहा है-

प्रथम वर-पितृपरितोष की याचना-परमपितृभक्त नचिकेता ने प्रथम वर के रूप में पितृपरितोष की याचना की। उसने सविनय मृत्युदेव से कहा-हे मृत्यो! जिससे मेरे पिता वाजश्रवस मेरे प्रति शान्तसङ्कल्प, प्रसन्नचित्त और क्रोधरहित हो जाएं तथा आपके भेजने पर मुझे पहचानकर मुझसे बातचीत करें। तीनों वरों में मेरा यही प्रथम वर है-

"शान्तसङ्कल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभिमृत्यो।

त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत् प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे"।।

मृत्युदेव यमराज ने नचिकेता को अभीष्ट वर प्रदान करते हुए कहा-"मेरी कृपा से उद्दालक वंश में उत्पन्न अरुण के पुत्र आरुणि अर्थात् तुम्हारे पिता पहले की भाँति ही विश्वस्त हो जायेंगे। मृत्यु के मुख से छूटे हुए तुमको वे पुनर्जीवित देखेंगे और क्रोधरहित होकर वे रात्रियों में सुखपूर्वक सोयेंगे"-

"यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीतः औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः।

सुखं रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान् मृत्युमुखात् प्रमुक्तम्"।।

द्वितीय वर-स्वर्ग की साधनभूत अग्नि विद्या की याचना विषयक द्वितीय वर-नचिकेता द्वितीय वर की याचना करते हुए कहता है कि हे देव! आप स्वर्ग की साधनभूत अग्नि विद्या के मर्मज्ञ हैं। द्वितीय वर के रूप में आप मुझे स्वर्ग की साधनभूत अग्नि का उपदेश करें। यमराज उसके द्वारा माँगे गए इस वर से प्रसन्न होते हैं और तदनुरूप उसे स्वर्गसाधनभूत अग्नि के विषय में ज्ञान देते हुए कहते हैं-"यह अग्नि अनन्त लोकों की प्राप्ति का साधन और संसार की आधारभूत है। उसे तुम मनुष्य के लिए गुफा में अर्थात् बुद्धि में छिपा हुआ गूढ़ रहस्य ही समझो"-

प्र ते ब्रवीमि तद्ध मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन्।

अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि स्वमेतं निहितं गुहायाम्।।

यमदेव ने आगे बताया कि लोकों की आदिकारणभूत उस अग्नि के विषय में नचिकेता से यम ने यज्ञकुण्ड आदि के निर्माण में जिन-जिन और जितनी अथवा जिस प्रकार की ईंटें प्रयोग की जाती हैं, उसे बताया और उस नचिकेता ने भी यमराज द्वारा उपदिष्ट ज्ञान जैसा कहा था, वैसा ही बता दिया-

"लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा।

स चापि तत्प्रत्यवदद् यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः।।

यमराज नचिकेता पर इतना प्रसन्न हैं कि उन्होंने स्वर्गसाधनभूत उस अग्नि का नाम नचिकेता के नाम पर रख दिया-"यह अग्नि जो मेरे द्वारा तुम्हें बताई गई है, तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगी अर्थात् जानी जायेगी"-

"तवैव नाम्ना भवितायमग्निः"।

इस अग्नि का महत्त्व बताते हुए यमदेव कहते हैं-"नाचिकेत अग्नि का तीन बार (ज्ञान, अध्ययन एवं अनुष्ठान रूप से) चयन करने वाला मनुष्य तीन व्यक्तियों (माता-पिता-आचार्य) से सम्बन्ध को प्राप्त होकर अर्थात् तीनों से सम्पर्क करके तीन कार्यों (यज्ञ, अध्ययन और दान) को करता हुआ जन्म और मृत्यु को पार कर जाता है तथा ब्रह्म से उत्पन्न, ज्ञानवान और स्तुति योग्य अग्नि को जानकर एवं आत्मभाव से उसका साक्षात्कार करके स्वबुद्धि प्रत्यक्ष शान्ति को आत्यन्तिक रूप से प्राप्त ककर लेता है-

"त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू।
ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति"।।

मरणोपरान्त जीव स्थिति का यथार्थ ज्ञान विषयक तृतीय वर- परम श्रद्धावान् एवं जिज्ञासु नचिकेता यमराज से कहता है कि हे देव! मरणोपरान्त जीव की क्या स्थिति होती है, इस सम्बन्ध में प्रायः लोगों में विचिकित्सा बनी रहती है। कतिपय विद्वान् कहते हैं कि वह विद्यमान रहता है तथा अन्य लोगों के मत में इसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अपने तृतीय वर के रूप में मैं इसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ-

"येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद् विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः"।।

तब यमदेव ने कहा-प्राचीन समय में देवों ने भी इस विषय में सन्देह किया था। धर्म का यह विषय अत्यन्त सूक्ष्म है, यह सरलता से जानने योग्य नहीं है। मुझे इस विषय में छोड़ दो अर्थात् मुझसे इस विषय में मत पूछो। वे नचिकेता से कोई अन्य वर माँगने का अनुरोध करते हैं तथा इसके बदले संसार की सभी उपयोगी दुर्लभ वस्तुओं को देने के लिए तैयार हो जाते हैं। परन्तु दृढ़निश्चयी किसी प्रलोभन में नहीं आता और कहता है-भोग मनुष्यों की सभी इन्द्रियों की शक्ति को क्षीण कर देते हैं। सम्पूर्ण जीवन थोड़ा ही है। रथ-घोड़े आदि तुम्हारे ही पास रहें, नृत्य और गीत भी तुम्हारे ही रहें-

"श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणां जरन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते"।।

नचिकेता आगे कहता है-धनादि से व्यक्ति कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकता है। आपके दर्शन हुए हैं तो धन प्राप्त हो ही जायेगा। जब तकक तुम स्वामी रहोगे, तुम चाहोगे, तब तक मैं जीवित रहूँगा। अतः मेरा वरदान तो वही होगा जो मैंने आपसे माँगा है-

"न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव"।।

बारम्बार नचिकेता की परीक्षा लेकर उसमें आत्मज्ञान की अदम्य लालसा देखकर यमराज ने आत्मरहस्य का विशद विवेचन किया-

मृत्युदेव ने सांसारिक वस्तुओं में प्रवृत्ति निवृत्ति के आधार पर मनुष्यों का दो प्रकार से में विभाजन किया- (1) प्रेय मार्गी जो अविद्या के कारण स्त्री, पुरुष धन, वैभव और इहलोक को एषणाओं में रहते हैं। (2) श्रेय मार्गी-जो विद्या के कारण इन सांसारिक सुखों से विमुख हो आत्मतत्त्व के साक्षात्कार का उपाय खोजने में लीन हैं।

कहा गया है-

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।।

अर्थात् श्रेय और प्रेय मनुष्य के पास आते हैं। बुद्धिमान् पुरुष उन दोनों को भलीभाँति समझकर अलग-अलग करता है। एवं वह प्रेय के समक्ष श्रेय को ही वरण करता है। किन्तु मूढ योग और क्षेम के कारण प्रेय को वरण करता है।

आत्मतत्त्व के रहस्योद्घाटन से पूर्व यमराज बताते हैं कि नित्य आत्मतत्त्व अनित्य साधनों से प्राप्त नहीं किया जा सकता।

आत्मा के रहस्य को स्पष्ट करते हुए यमराज कहते हैं कि नित्य चैतन्य स्वरूप अनन्त काल तक रहने वाला आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है। यह न किसी से और कहीं से उत्पन्न हुआ है। यह अजन्मा, नित्य, अविनशी तथा पुरातन है। शरीर नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता-

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चित्र बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

उत्पत्ति और नाश के निषेध से सभी छः भाव विकारों का निषेध समझ लेना चाहिए। अतः आत्मा किसी भी प्रकार से विकारी नहीं बनता, यह तात्पर्य है। उसके चैतन्य का कभी लोप नहीं होता क्योंकि वह चैतन्य स्वभाव है। अतः उसे मेधावी कहा जाता है। शाश्वत कहने का तात्पर्य है कि इसमें कभी किसी भी प्रकार की कमी नहीं आती। पुराण शब्द का प्रयोग सोद्देश्य है। इसका अर्थ है-पुरा अपि नव एव'।

यमराज आगे कहते हैं कि यदि मारने वाला आत्मा को मारने के लिए सोचता है, और मारा जाने वाला उसे मारा हुआ समझता है, तो वे दोनों ही उसे नहीं जानते। वस्तुतः न यह मारता है और न मारा जाता है-

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतौ नायं हन्ति न हन्यते।।

कहने का तात्पर्य यह है कि शरीर मात्र को ही आत्मा मानने वाला शरीर को मारने पर अपने को मारने वाला समझता है और शरीर के मार खाने पर अपने को मार खाने वाला समझता है। परन्तु, जो शरीर में रहने वाला निर्विकार आत्मतत्त्व को समझ गया है, वह तो शरीर के मारने पर या मार खाने पर भी वैसा ही निर्विकार बना रहता है एवं कभी भी यह नहीं समझता कि मैंने मारा या मार खाई। जो ऐसा मानते हैं, वे वस्तुतः आत्मा को जानते ही नहीं। आत्मा सर्वथा विकारों से रहित है एवं आकाश की तरह निरवयव सर्वव्यापक है।

प्राणी की हृदय गुफा में रहने वाली आत्मा सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा महान् से महान् है। आत्मा की इस महिमा को कामना रहित निष्काम पुरुष (साधक) इन्द्रियों की सहायता से देखता है और शोक रहित हो जाता है-

अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।।

कहने का तात्पर्य है कि आत्मदर्शन हमेशा ही प्राणी को अपनी हृदय गुफा में ही होता है। ब्रह्मा से लेकर घास के तिनके पर्यन्त सभी प्राणियों के हृदय में ही आत्मा स्थित है। इससे जो आत्मा का दर्शन अपने से बाहर करने का प्रयत्न करता है, उसको आत्मदर्शन कभी नहीं हो सकता।

यह आत्मा स्थित हुआ भी दूर तक जाता है, शयन करता हुआ भी सर्वत्र पहुँचता है। हर्ष से युक्त भी और रहित भी-

आसीनो दूरं व्रजति शयानो यातो सर्वतः।

शरीर रहित नश्वर शरीरों में अवस्थित अचल, महान् तथा सर्वव्यापी रूप में उस आत्मा को जानकर धीर व्यक्ति शोक नहीं करता है-

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।

महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति।।

यह आत्मा न तो प्रवचन से, न मेधा या धारणा शक्ति से और न बहुत श्रवण से ही प्राप्त करने योग्य है। जिस साधक को यह आत्मा वरण कर लेता है, उसी के द्वारा वह प्राप्त करने के योग्य है। उसी साधक के प्रति यह आत्मा अपने स्वरूप को प्रकट कर देता है-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।

यमवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।।

जो पाप-कर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ शान्त नहीं हैं, जो समाहित नहीं है, और जिसका चित्त शान्त नहीं है, वह आत्मा को केवल शुष्क ज्ञान से प्राप्त नहीं कर सकता है-

नाविरतो दुश्चरितात् नाशान्तो नासमाहितः।

नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैमाप्नुयात्।।